Chap-7

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

: सप्तम् अध्याय :

: उपसंहार :

सत्य का मार्ग वीरता का मार्ग है, वहाँ कायर व्यक्ति का काम नहीं है। साहित्य की यात्रा भी सत्य की यात्रा है। हालांकि वहाँ मध्यमार्गियों ने "साहित्य" के "सत्य" को "शिवम्" और "सुन्दरम्" से संपृक्त करके उसे सबके लिए ग्राह्य बनाने का यत्न किया है। जबकि यह भी उतना ही सत्य है कि "सत्य" सबके लिए ग्राह्य हो ही नहीं सकता। जो साहित्य या कला को जीवन के लिए मानते हैं वे सत्य के उस निर्भ्रान्त रूप को लेकर चलते हैं और जो "कला कला के लिए" वाले हैं, वे "सत्य" को उस रुप में रखते हैं, जहाँ उन्हें किसीके विरोध से टकराना नहीं पड़ता। सूक्ष्म, शास्त्रीय-सम्मत, इन्हें क्या खतरा हो सकता है। खतरा तो वहाँ आता है जहाँ साहित्य में विचार, विचार धारा या जीवन-दृष्टि का समावेश होता है। और इसीलिए रहस्यवादी कबीर किसीको परेशान नहीं करते। षडचक्र कुण्डलिनी, ध्यान, योग भला इनसे किसीको क्या बैर हो सकता हैं? परंतु क्रान्तिकारी विचारधारा को लेकर चलने वाले "कबीर" से तो कुछ न्यस्त हितवाले लोगों को खतरा ही खतरा महसूस होगा। मूर्तिपूजा, मन्दिर-मस्जिद, विधि-विधान, रुढ़ि-परंपरा, शास्त्र इत्यादि का विरोध होगा तो कइयोंका तो धन्धा ही बन्द हो जायेगा, उन्हें तो अपना अस्तित्व ही खतरे में नज़र आयेगा।

अन्धविश्वासों को पालने के लिए, अन्धविश्वासों की खेती के लिए तो ऐसा समाज चाहिए जो हंमेशा नशे में चूर रहता हो, जो सोचना-विचारना ही न चाहता हो, जो सोचने विचारने के काम को एक विशिष्ट वर्ग को सौंपकर निश्चिन्त और निर्द्वन्द होकर सो जाना चाहता हो। कुंभकर्ण सोता रहेगा तभी तो रावण राज्य करेगा। इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म की खोज की जहाँ संशय, तर्क, प्रश्न, अंग्रेजी में कहें तो रीज़निंग को फिजूल की, बेकार की चीज समझा जाता हैं। जिस संशय प्रश्न से विज्ञान का विकास हुआ, उसे ही "आत्मा" के विनाश का कारण बता दिया गया।

समाज का ढांचा ही ऐसा कृत्रिम है, आरोपित है, कि मनुष्य को सिवाय हताशा के और कुछ हासिल नहीं हो सकता। विश्व में कहीं भी समानता नहीं है, शान्ति नहीं है, न्याय नहीं है, विवेक नहीं है। धनिक ज्यादा धनिक हो रहे हैं, गरीब ज्यादा गरीब। अमीरी और गरीबी में जमीन-आसमान का अंतर पैदा हो

गया है। नैतिकता और अनैतिकता दोनों बेमानी होते जा रहे हैं। लोग अगरचे अनैतिक आचरण करते हैं, तब भी उनकी पूजा-अर्चना होती है। धनवान धनवान हीं नहीं स्रोतवान भी हो जाते हैं। ऐसे ढांचे के खिलाफ यदि कोई आवाज़ उठाना चाहे, विद्रोह करे, तो ऊपर शिखर पर विराजमान मंडली उसे चुप करा देती है। कोई न्यायालय भी उसकी सहायता नहीं कर सकता क्योंकि इन सहस्त्र-स्रोत-स्वामियों ने उनको भी खरीद लिया होता है। ऐसे में विचारवान व्यक्ति स्वयं को अकेला, अलग-थलग, अज़नबी और "आउटसाइडर" समझने लगता है। वह स्वयं को समाज में "मिसफिट" समझने लगता है।

हम बातें बड़ी-बड़ी करते हैं। न्याय की, धर्म की, समानता की, शांति की, संतोष की, समूचे विश्व को अपना परिवार बताते है, स्त्रियों को माता देवी और शक्ति का स्रोत बताते है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" और जाने क्या-क्या ? बातें, सिर्फ बातें, खोखली बातें, व्यवहार में, आचरण में कुछ और। पूरा विश्व हमारा परिवार। पर पीडितों के प्रति, दलितों के प्रति, स्त्रियों के प्रति हमारे व्यवहार में गैर-बराबरी, अन्याय और अत्याचार।

ऐसे में कला की, सौन्दर्य और रूप की, सूक्ष्म की बातें करना और लिखना खतरापूर्ण कतई-कतई नहीं होता। मैं ऐसे एक विद्वान को जानती हूँ जो गुजरात में बोलते है तो उनके सूर और स्वर बहुत सध-सध कर लगाते हैं, और वे ही जब लखनऊ या कलकत्ता में किसी वाम रूझान वाले जल्से में बोलते हैं तो उनके सूर और स्वर अलग-अलग प्रकार के होते हैं। ऐसे लोग बहुत सुख और आराम से रह सकते हैं। उन्हें कोई विष नहीं देगा, न उन्हें सूली पर चढ़ाया जाएगा, न गोली से मारा जाएगा। उसके सर कलाम करने का फतवा कोई नही देगा, उसे अपने वतन से बेदखल भी नहीं होना पड़ेगा। तकलीफ तो उनको होती है या उनको दी जाती है जो सहमतियों की आरती नहीं उतारते हैं, जो विराधी प्रवाहों में चलने और तैरने का हौंसला रखते हैं। जो स्थिति साधकर कहीं पक्षकार तो कहीं तटस्थ हो जाते हैं, ऐसे लोगों को कोई खतरा नहीं उठाना पड़ता।

मैं ऐसा लिख रही हूं क्योंकि सन् 1990 के बाद की एक समकालीन हिन्दी लेखिका जो हिन्दी साहित्य गगन में धूमकेतु की तरह धंस आयी हैं। उनके संदर्भ में मैंने अपना यह शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। हाँ जी, मै अपनी आलोच्य लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की बात करती हूँ।

मैत्रेयी पुष्पा इस समय हिन्दी साहित्य में सबसे ज्यादा पढ़ी जानेवाली, विस्तृत पाठक-वर्ग को प्रभावित करने वाली, प्रतिज्ञाबद्ध या प्रणबद्ध होकर नारी-विमर्श में नारी के हक में, उसकें अधिकारों के लिए, मानवीय जीवन मूल्यों के लिए, एक विचारधारा को लेकर चलने वाली लेखिका है। प्रेमचंद ने ग्रामीण स्त्रियों पर लिखा था, पर स्त्रियों के गाँव के गाँव ले आनेवाली लेखिका तो मैत्रेयी है। और विचित्रता तो देखिए। समकालीन लेखिकाओं का एक समूचा वर्ग लामबद्ध होकर उसके खिलाफ मोर्चा साध खड़ा हो गया है। डा.निर्मला जैन हो, या मृदुला गर्ग, या चित्रा मुदगल, चन्द्रकांता, कमलकुमार, मैत्रेयी को खारिज़ करने के लिए आमादा। पर दूसरी ओर डा.रोहिणी अग्रवाल हैं, राजेन्द्र यादव हैं, कमलेश्वर हैं, मनोहर श्याम जोशी हैं, डा.वीरेन्द्र यादव हैं, प्रोफेसर मेनेजर पांडेय हैं, अजीत कौर हैं, महाश्वेतादेवी हैं, मन्नू भण्डारी हैं, डा.परमानंद श्रीवास्तव हैं, डा.वेदप्रकाश अमिताभ हैं, डा. अर्जुन चौहाण हैं, प्रो.शिवकुमार हैं, प्रो,पारुकांत देसाई हैं, अर्चना वर्मा हैं, गिरिराज किशोर हैं, डा.काशीनाथ सिंह हैं और डा.नामवरसिंह हैं जो मैत्रेयी के लेखन की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं और उन्हें इस दौर की एक महत्वपूर्ण और बड़ी लेखिका मानते हैं।

हैदराबाद से गोरखनाथ तिवारी ने पत्र लिखा था – मैत्रेयी जी, दो साल से मेरे दिल में हलचल थी। उपन्यास पढ़े, आत्मकथा पढ़ी। सोच लिया शोध करना है इन्हीं पुस्तकों पर... पी-एच.डी. करुँगा। मेरे प्रोफेसर टी. मोहनसिंह समस्त छात्रों से कहते है - मैत्रेयी पुष्पा के किसी एक उपन्यास को अपने विषय-क्षेत्र में रखो, क्योकि वे बीसवीं सदी की सबसे प्रसिद्ध ग्राम्य-जीवन पर लिखने वाली एकमात्र उपन्यासकार हैं। जो उनका उपन्यास नहीं पढ़ेगा, पी-एच.डी. की डिग्री लेकर क्या करेगा ? (गुड़िया भीतर गुड़िया, पृ.330) जो बात प्रोफेसर टी. मोहनसिंह के मन में थी, लगभग वैसी ही बात हमारे विश्व-विधालय के भूतपूर्व प्रोफेसर डा.पारुकान्त देसाई के मन में थी। यद्यपि वह निवृत हो चुके थे पर प्रबुद्ध छात्रों से मिलना-मिलाना उनके स्वभाव में था। अतः एक संगोष्ठी के दौरान औपचारिक बातचीत में मैंने उनसे अपनी जिज्ञासा प्रकट की कि मैत्रेयी पर काम करना हो तो किस विषय पर हो सकता है। उन्होंने बताया कि मैत्रेयी के कथा-साहित्य में वस्तु, पात्र, समस्याओं को लेकर तो कई जगह काम हो रहे हैं परंतु तुम यदि सचमुच में इस विषय को लेकर गंभीर हो तो मैत्रेयी की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में काम हो सकता है। उसके बाद मैडम डा. शन्नो पांडेय से कई-कई बैठकों के उपरान्त "मैत्रेयी पुष्पा की

आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन" विषय पर मेरा नाम पंजीकृत हो गया दिनांक 19-11-2008 को और अब लगभग चार साल के उपरान्त शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने जा रही हूँ।

साहित्य जगत के कुछ समीक्षक इस अवधारणा के विपरीत हैं कि किसी कृति-विशेष या किसी लेखक-लेखिका पर काम करने के लिए उसके जीवन के वैयक्तिक पक्षों से रुबरु होना चाहिए। उनकी अवधारणा है कि उससे वस्तुलक्षी या कृति-लक्षी तटस्थ दृष्टि को व्याघात पहुंचता है। वे बहुउदृत एलियट के मत की भी बात करते है कि रचनेवाले कलाकार/कथाकार और भुगतने वाले प्राणी में फासला होना चाहिए और यह फासला जितना हो ज्यादा होगा, कलाकार उतना ही बड़ा माना जाएगा। लेकिन इसे समझने के लिए भी तो कलाकार के जीवन को जानना पड़ता है। चेखोव कहा करते थे कि कहानी कहने के लिए एक छोटा सा सूत्र हाथ आ जाए तो वह उस पर पूरी रचना का संयोजन कर सकते थे। मैत्रेयी ने मंदा और सारंग की रचना की तो कितना उन वास्तविक पात्रों में होगा और कितना मैत्रेयी ने उसमें जोड़ा उसे जानने के लिए भी यदि हम उनके जीवन से रुबरु होते हैं तो वह मामला बड़ा दिलचस्प हो सकता है। उपन्यास के अनेकानेक आलोचकों ने कहा है कि उपन्यास उसके रचयिता के प्रत्यक्ष और वास्तविक जीवनानुभवों का आकलन है। वह जीवन पर की गई टिप्पणी है। ऐसी स्थिति में यदि हम किसी लेखक या लेखिका के जीवनानुभवों से रुबरु होते है तो उसकी रचनाओं के रसास्वादन में हमें और भी सहूलियत रहती है। पश्चिम में तो इस प्रकार के कई अध्ययन हुए है। कई लेखकों व कवियों की डायरी या जीवनकथा या आत्मकथा इत्यादि उपलब्ध हो रहे हैं और उनको केन्द्र में रखते हुए उनकी रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन भी हो रहा है। "राइटर्स एट वर्क सीरिज़ फर्स्ट" तथा " राइटर्स एट वर्क सीरिज़ सेकण्ड" तथा "रिल्के की डायरी", "शब्दों का मसीहाः सार्त्र" तथा "कामू : वह पहला आदमी" , "लियो टोल्सटोय की पत्नी की डायरी के कुछ पन्ने" आदि इस प्रकार की रचनाएं है। लगभग अस्सी के दशक में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से एक किताब आयी थी – मेरा हमदम मेरा दोस्त" – उसमें राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी इत्यादि ने एक दूसरे के सम्बन्ध में लिखा है जो उन-उन लेखकों को समझने के लिए सहायक हो सकता है। "मैं इनसे मिला" (पदमसिहं "कमलेश") में भी हिन्दी के कई लेखकों के साक्षात्कार व संस्मरण है। प्रेमचंद की दो जीवनियाँ उपलब्ध है -

कलम का मजदूर (मदन गोपाल) और "कलम का सिपाही" (अमृतराय)। इन दो जीवनियों के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के कथा-साहित्य का अनुशीलन तो हमारी विश्वविद्यालय में ही डा.लीना चौहाण के द्वारा हो चुका है। अतः मैत्रेयीजी की दो आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यासों का यह अध्ययन भी शोध-अनुसंधान के नये क्षितिजों का उद्घाटन करेगा ऐसी मेरी धारणा अकारण नहीं है।

शोध-प्रबंध में युक्तियुक्त विश्लेषण को केन्द्रस्थ रखते हुए उसे निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है ---

(1) प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश

(2) द्वितीय अध्याय : हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास।

(3) तृतीय अध्याय : "कस्तूरी कुण्डल बसै" का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

(4) चतुर्थ अध्याय : "गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

(5) पंचम् अध्याय : मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

(6) षष्ठ अध्याय : आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषण एवम् मूल्यांकन।

(7) सप्तम् अध्याय : उपसंहार।

मेरा शोधकार्य मैत्रेयी पुष्पा की जिन रचनाओं पर आधृत हैं, उनमें स्पष्टतया दो साहित्यिक विधाओं का समावेश होता है – उपन्यास और आत्मकथा। अतः शुरु के दो अध्याय क्रमशः उपन्यास और आत्मकथा से सम्बद्ध हैं। प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" में हिन्दी उपन्यास से जुड़े हुए कतिपय महत्वपूर्ण मुद्दों की पड़ताल करने का यत्न किया है। हिन्दी उपन्यास का उद्भव तो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवजागरण की चेतना के वाहक के रुप में हुआ था, परंतु उसे पहचान मिली मुंशी प्रेमचंद के द्वारा। फलतः प्रायः सभी इतिहासकारों ने प्रेमचंद के उस मेरुदण्डीय अवदान को परिलक्षित करते हुए उपन्यास की विकास-यात्रा के विभिन्न सोपानों की बात करते हुए प्रेमचंद के नाम को केन्द्र में रखा गया है, यथा – पूर्वप्रेमचंदकाल (सन् 1878-1918), प्रेमचंदकाल (सन् 1918-1936), प्रेमचन्दोत्तरकाल (सन् 1936-

अधावधि) । प्रेमचन्दोत्तरकाल को पुनः स्वाधीनता-पूर्वकाल (सन् 1918-1947), स्वातंत्र्योत्तरकाल (सन् 1947-1960), साठोत्तरी काल (सन् 1960-1985) और समकालीन उपन्यास (सन् 1985-अधावधि) आदि उप-कालखण्डों में विभक्त किया गया है। हिन्दी उपन्यास के इस एक सौ पैंतीस वर्षीय फलक में नाना औपन्यासिक प्रवृत्तियां, जैसे सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, व्यंग्य उपन्यास, पौराणिक उपन्यास, साठोत्तरी उपन्यास, समकालीन उपन्यास, आदि-आदि उपलब्ध हो रही हैं। "साठोत्तरी" और "समकालीन" में काल-विषयक अवधारणा भी शामिल है, पर यह भी उतना ही सच है कि केवल साठ के बाद की या पच्चासी के बाद की रचना होने मात्र से उन्हें साठोत्तरी वा समकालीन नहीं कहा जा सकता, उनमें क्रमशः साठोत्तरी या समकालीन चेतना भी होना लाजमी है। उपन्यास की परिभाषा के निष्कर्ष रुप में कहा गया है कि यथार्थधर्मिता ही उपन्यास का प्राणतत्व है। दूसरे इसी अध्याय में शुरु से लेकर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों तक के सीमा-चिन्ह रुपी उपन्यासों को भी रेखांकित किया गया है। इन उपन्यासों में सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान (प्रेमचंद); विराटा की पदमिनी, मृगनयनी (वृन्दावनलाल वर्मा); जय सोमनाथ, वैशाली की नगरवधू, वयं रक्षामः (आचार्य चतुरसेन शास्त्री); फागुन के दिन चार, घण्टा (पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"); गिरती दीवारें, गर्म राख (उपेन्द्रनाथ अश्क); परख, त्यागपत्र, मुक्तिबोध, दशार्क (जैनेन्द्र); शेखर एक जीवनी भाग 1-2, नदी के द्वीप (अज्ञेय); जहाज का पंछी, प्रेम और छाया (इलाचन्द्र जोशी); अमृत और विष, बूंद और समुद्र (अमृतलाल नागर); टेढ़े मेढ़े रास्ते, प्रश्न और मरीचिका (भगवती चरण वर्मा); मैला आंचल, परती परिकथा (रेणु); सारा आकाश, कुलटा, शंह और मात (राजेन्द्र यादव); तीसरा आदमी, डाक बंगला, कितने पाकिस्तान (कमलेश्वर); अंधेरे बन्द कमरे (मोहन राकेश); वे दिन (निर्मल वर्मा); मित्रो मरजानी, सूरजमुखी अंधेरे के (कृष्णा सोबती); अठारह सूरज के पौधे, बैसाखियों वाली इमारत (रमेश बक्षी); मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी); आपका बण्टी, महाभोज (मन्नू भंडारी); आधा गाँव, दिल इक सादा कागज़ (डा.राही मासूम रज़ा); जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब (डा.रामदरश मिश्र); अलग-अलग वैतरणी, नीला चांद (डा.शिवप्रसाद सिंह); राग दरबारी (श्रीजाल शुकल); प्रेम अपवित्र नदी (लक्ष्मीनारायण लाल); काला जल (शानी), धरती

धन न अपना (जगदीशचन्द्र); पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका? (उषा प्रियंवदा); मुर्दाघर (जगदम्बाप्रसाद दीक्षित); चित्त कोबरा, उसके हिस्से की धूप (मृदुला गर्ग); बेघर (ममता कालिया); पतझड़ की आवाजे, बंटता हुआ आदमी (निरुपमा सेवती); नावें, सीढ़ियां (शशिप्रभा शास्त्री); तत्सम (राजी सेठ); कलिकथा : वाया बायपास (अलका सरावगी), अनारो (मंजुल भगत), मुझे चांद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा), काशी का अस्सी (काशीनाथ सिंह), सात आसमान (असगर वज़ाहत), पीली आंधी (प्रभा खेतान), ठीकरे की मंगनी, शाल्मली (नासिरा शर्मा); सलाम आखिरी (मधु कांकरिया); आवां (चित्रा मुद्‌गल) इत्यादि की गणना कर सकते है। यहाँ तक कि औपन्यासिक यात्रा के उपन्यास हमने मैत्रेयीजी के उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है क्योंकि उन उपन्यासों का विस्तृत विश्लेषण तो हमारे शोध-प्रबंध का लक्ष्य ही है।

जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है हमारा कार्य मैत्रेयी के उपन्यासों पर है, पर उनका अनुशीलन उनके द्वारा प्रणीत दो आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में करने का हमारा उपक्रम है । अतः द्वितीय अध्याय में हमने आत्मकथा-विषयक विविध मुद्दों की पड़ताल की है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में इस विधा पर बहुत कम विवेचन हुआ है। आत्मकथाओं की विविध परिभाषाओं के प्रकाश में उसके मुख्य अभिलक्षणों को उकेरते हुए आत्मकथा और जीवनी या जीवन-चरित्र का अंतर; रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोतार्ज आदि रुपों से उसके अन्तर्सम्बन्ध, उसकी शक्ति-सीमा, आत्मकथा-लेखन के भयस्थान जैसे मुददों की यहाँ पड़ताल की गई है। तदुपरांत हिन्दी आत्मकथा की विकास-यात्रा, उसके प्रमुख सोपान, नेताओं-समाजसुधारकों और साहित्यकारों की आत्मकथा के संक्षिप्त विवरण के उपरान्त समकालीन हिन्दी दलित लेखकों की आत्मकथाओं तथा समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं के संक्षिप्त ब्यौरे प्रस्तुत किए गए है। समकालीन दलित लेखकों की आत्मकथाओं में "अपने अपने पिंजरे" (डा.मोहनदास नैमिशराय), "जूठन" (ओमप्रकाश वाल्मीकि), "दोहरा अभिशाप" (कौशल्या बैसन्त्री), "तिरस्कृत", "संतप्त (सूरजपाल चौहाण); "झोंपडी से राजभवन तक" (माताप्रसाद), "मेरा सफ़र मेरी मंजिल" (डा.डी.आर. जाटव), नागफणि (रुपनारायण सोनवणेकर), "एक भंगी उपकुलपति की अनकही कहानी" (प्रो.श्यामलाल),

"मेरा बचपन मेरे कंधे पर" (श्यौराजसिंह बेचैन) तथा "मुर्दहिया" (प्रो.तुलसीराम) प्रभुति के संक्षिप्त विवरण दिए गए है ।

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में "जो कहा नहीं गया" (कुसुम अंसल), "लगता नही है दिल मेरा" (कृष्णा अग्निहोत्री), "पिंजरे की मैना (चन्द्रकिरण सौनरेक्सा), "अन्या से अनन्या" (डा.प्रभा खेतान), "हादसे" (डा.रमणिका गुप्ता), "दोहरा अभिशाप" (कौशल्या बैसन्ती), "एक कहानी यह भी" (मन्नू भंडारी) प्रभुति आत्मकथाओं की संक्षिप्त चर्चा करते हुए मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं – "कस्तूरी कुण्डल बसै" तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" – तक उस यात्रा को पहुंचाया गया है । प्रस्तुत अध्याय में इन दो आत्मकथाओं पर बहुत संक्षेप में विचार किया गया है, क्योंकि परवर्ती अध्यायों में उनका विस्तृत ब्यौरेवार विश्लेषणात्मक अध्ययन हम करने वाले है ।

तृतीय और चतुर्थ अध्याय में हमने क्रमशः "कस्तूरी कुण्डल बसै" तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" विस्तृत विश्लेषणमूलक अध्ययन किया है । "कस्तूरी कुण्डल बसै" में मैत्रेयीजी की माताजी कस्तूरी के जीवन संघर्ष, उनके जीवट, उनकी जिजीविषा, उनके नारीवादी स्वतंत्र विचार, शिक्षा-विषयक उनकी लगन, स्वतंत्र भारत में "महिला मंगल योजनाओं" के अंतर्गत स्त्रियों के विकास और उनके सशक्तीकरण के उपाय, मैत्रेयी की शिक्षा के लिए किए गए उनके प्रयत्न, शिक्षा के ही कारण ममता को दरकिनार कर बिटिया को अलग-अलग जगह अलग-अलग लोगों के यहाँ उनके ही भरोसे पर छोड़ना जैसी कई बातो का विवरण मिलता है जिससे कस्तूरी के दृढ़ मनोबल का परिचय हमें मिलता है । कस्तूरी की कथा का प्रारंभ ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर और स्वाधीनता संग्राम के महात्मा गांधी के आंदोलन की भूमिका में होता है । उस समय लगान वसूली के लिए किसानों पर अमानुषी अत्याचार होते थे । उसके त्रास से नजात पाने के लिए कस्तूरी को बेचा गया था । उनकी शादी महज एक सौदा था । कस्तूरी को इसकी कसक आखिर तक रहती है । विवाह के बाद मैत्रेयी का जन्म होता है और उसके कुछ समय बाद ही कस्तूरी के पति हीरालाल की मृत्यु हो जाती है । अपने खेत-खलिहान संभालते हुए कस्तूरी का पढ़ने का फैसला, ससुर मेवाराम का सहयोग, शिक्षा के बल पर सरकारी नौकरी पाना, उसके द्वारा कई निराधार विधवा स्त्रियों का उद्धार, मैत्रेयी की शिक्षा पर अधिक बल देना, बरअक्स इसके मैत्रेयी का पढ़ने में ज्यादा ध्यान न होना, पढ़ाई के कारण मैत्रेयी को अलग-अलग गाँवो में दूसरों के संरक्षण में छोड़ना

जैसी अनेक घटनाओं का यहाँ आलेखन हुआ है । इस प्रकार यह आत्मकथा कस्तूरी की जीवनी और मैत्रेयी की आत्मकथा ठहरती है । इसमें मैत्रेयी का शिक्षा-विषयक संघर्ष, कस्तूरी का अपनी नौकरी का संघर्ष, मैत्रेयी का विवाह-संघर्ष और उसके एक बच्ची होने तक की कथा वर्णित है । कस्तूरी चाहती थी कि मैत्रेयी खूब पढ़े, अधिकारी बने और "पावर और पोजिशन" हासिल करे; दूसरी ओर मैत्रेयी विवाह करके गृहस्थी बसाने के सपने देख रही थी । यहाँ मां हारती भी है और जीतती भी है । मैत्रेयी के विवाह में कस्तूरी की हार थी, परंतु बिना दहेज के केवल शिक्षा के बल पर डा.शर्मा जैसे हीरे-से दामाद को पाना उनकी जीत थी । यहाँ वैचारिक सोच में कस्तूरी मैत्रेयी से भी आगे निकल जाती है,

चतुर्थ अध्याय "गुड़िया भीतर गुड़िया" के विश्लेषण को लेकर है । इसका कथापट सन् 1972 से 2003 तक विस्तृत है । कस्तूरी अपनी और महिला मंगल की अपनी सहयोगी स्त्रियों की नौकरी के लिए संघर्ष करती है, जेल तक जाती है, अंततः उनको तथा कुछेक पढ़ी-लिखी स्त्रियों को नव-विकसित परिवार कल्याण योजना के तहत नौकरी में रखा जाना है, परंतु कस्तूरी जहाँ भी जाती है वहाँ के अधिकारीयों, डाक्टरों और नर्सों के लिए सर-दर्द साबित होती है क्योंकि कस्तूरी को भ्रष्टाचार और बेईमानी से सख्त नफ़रत है जबकि आजादी के बाद सरकारी महकमों में भ्रष्टाचार की बेल-लता खूब लहलहा रही है । इस प्रकार अंत तक संघर्ष करती हुई, मानव-मूल्यों के लिए लड़ती हुई, जूझती हुई कस्तूरी की मृत्यु होती है (पृ.126) । बेटी के दामाद डा.सुभाष ही माताजी को अस्पताल ले गये थे । तब तक मैत्रेयी के तीन बेटियां हो चुकी थीं । दो के विवाह भी हो गये थे । उनके पति भी डाक्टर ही थे । इस प्रकार ये आत्मकथाएं स्त्री में गुंथी हुई स्त्री की तीन पीढ़ियों की कथा है जिन्हें एक औरत ही आगे ले जा रही है । "गुड़िया भीतर गुड़िया" में मैत्रेयी और डाक्टर का दिल्ली आना, मैत्रेयी और डाक्टर में निरंतर चलते रहने वाले संघर्ष, कलह, लडाई-झगड़े, समझौते, मैत्रेयी की बेटियों के उच्च-शिक्षा, तीनों बेटियों का डाक्टर होना, बेटियों के ही आग्रह पर मैत्रेयी का साहित्य-जगत में आने के प्रयास, जिसके फलस्वरुप "गुड़िया" के भीतर से एक दूसरी "गुड़िया" (लेखिका मैत्रेयी पुष्पा) का निकलना, शुरुआती संघर्ष, एम्स की मेडिकल दुनिया, साहित्य जगत में भी चलने वाली धांधलियां, छल-छदम् आदि का

ब्यौरेवार आकलन हुआ है । ऐसा लगता है कि यह जो "गुड़िया" के भीतर से दूसरी "गुड़िया" निकली है वह कस्तूरी का ही मानो पुनर्जन्म है ।

कई बार जीवन मे संयोग का भी बड़ा महत्व प्रतीत होता है । डाक्टर साहब का अलीगढ़ से दिल्ली आना, मैत्रेयी का इल्माना से मिलना, "गोडमधर" के कारण मैत्रेयी का साहित्यिक कार्यक्रमों में जाना, इसी उपक्रम में मैत्रेयीजी का मन्नूजी से मिलना और अंततः राजेन्द्र यादव से मिलना, ये सब इसी प्रकार के संयोग है । बेटियां ही मैत्रेयी को प्रेरित करती है । शुरुआती संघर्ष में कुछ कविताएं, कहानियां, "स्मृतिदंश" (उपन्यासिका), "बेतवा बहती रही" (लघु उपन्यास) मैत्रेयी की जमा-पूंजी थी । पर मैत्रेयी को मैत्रेयी बनाने वाले तो रेणु और राजेन्द्र यादव है । कई-कई बार रिजेक्ट होने के बाद मैत्रेयी की "सेंध" कहानी हंस में प्रकाशित होती है "जमीन अपनी अपनी" शीर्षक से । मानों साहित्य के आकाश में "सेंध" लग गई । "स्मृतिदंश" और "बेतवा बहती रही" प्रकाशित हो चुके थे पर कथा-साहित्य के लिए आवश्यक "विजन", जीवन-दृष्टि का उनमें अभाव था । राजेन्द्र यादव ने मैत्रेयीजी को जो मार्गदर्शन दिया, अपनी जमीन से जुड़ने की जो बात बतायी, अपनी जड़ों को तलाशना और जड़ों की ओर लौटना जो सिखाया उसके कारण मैत्रेयीजी में वह औपन्यासिक विजन आया । उन्होनें जीवनानुभवों की अपनी पूंजी को टटोला - खंगाला और पाया कि यहाँ तो मानो खजाना गड़ा है ।

"इदन्नमम" वह उपन्यास है जिससे मैत्रेयीजी की पहचान बनती है । जो कार्य "मैला आंचल" मे रेणु के लिए, "अंधेरे बन्द कमरे" ने मोहन राकेश के लिए, "त्यागपत्र" ने जैनेन्द्र के लिए "सारा आकाश" ने राजेन्द्र यादव के लिए किया था, वही कार्य "इदन्नमम" ने मैत्रेयी के लिए किया । एक सामान्य लेखिका से समकालीन लेखिकाओं की प्रथम पंक्ति में वह विराजमान हो जाती है । इसके बाद मैत्रेयी पीछे मुड़कर नहीं देखती । एक के बाद एक जबरदस्त उपन्यास - चाक, झूला नट, अल्मा कबूतरी, अगनपाखी, त्रियाहठ, विजन, गुनाह-बेगुनाह । इनमें से "अल्मा कबूतरी" तक के उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया की चर्चा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में हुई है । "झूला नट" और "अगनपाखी" के जरा-तरा उल्लेख मिलते है । इन उपन्यासों के कारण मैत्रेयीजी "लाईम लाईट" में आ जाती है । "अल्मा" पर तो उन्हें सार्क लिटररी एवार्ड मिलता है । कई प्रकार के एवार्ड और सम्मान-लगातार लगातार । फलतः वह कई समकालीन लेखिकाओं के लिए हसद का सबब बन जाती है, दूसरी ओर बहुत

से दिग्गज समीक्षकों तथा पाठकों के विराट समुदाय की ओर से उनका स्वागत होता है ।

पांचवे अध्याय में हमने उनके उपन्यासों का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके उल्लिखित उपन्यासों में "विजन" को छोड़कर शेष का देशगत या स्थानगत परिवेश ग्रामीण या कस्बाई है । ये गाँव और कस्बे बुंदेलखंड के है । अतः बुंदेलखंड की एक सशक्त लेखिका के रुप में मैत्रेयीजी जानी जाती है । "गुनाह-बेगुनाह" का परिवेश हरियाणा का है । "विजन" में जहाँ "मेडिकल जगत" की विद्रूपताओं और विसंगतियों को उकेरा गया है, वहाँ "गुनाह-बेगुनाह" में पुलिस-जगत की विद्रूपताओं और विसंगतियों को उखेरा गया है । "अल्मा कबूतरी" में उन्होंने बुंदेलखंड की कबूतरा जाति के नग्न यथार्थ को चित्रित किया है । इस प्रकार हर उपन्यास में एक नयी जमीन, नया विषय और नये क्षितिजों की तलाश मानो मैत्रेयी की फितरत में शामिल है ।

सहस्त्राधिक वर्षो से धर्म, शास्त्र, रुढियों, रीतिरिवाजों, परंपराओं के नाम पर स्त्री को लाचार, कमजोर, विवश और अबला बना दिया गया है । अतः मैत्रेयी स्त्री-सशक्तिकरण की मुहिम को लेकर चली है । उन्होंने अपने उपन्यासों में एक से बढ़कर एक धांसू, दबंग नायिकाएं दी है । मन्दा, सारंग, शीलो, आभा, नेहा, अल्मा, इला और समीना । "स्मृतिदंश" की भुवन और "बेतवा बहती रही" की उर्वशी वही छायावादी अपने आंसुओं से संधिपत्र लिखने वाली कमजोर नायिकाएं थीं; परंतु उनके पुनर्पाठ "अगनपाखी" और "त्रियाहठ" की क्रमशः भुवन और उर्वशी कमजोर नहीं है । अपने अपराध का परिशोध मैत्रेयी ने यों कर लिया है ।

अंतिम षष्ठ अध्याय में हमने पुनः उक्त उपन्यासों को मैत्रेयीजी की आत्मकथाओं के प्रकाश में छानने और खंगालने का काम किया है । इनमें से जैसा कि उपर निर्दिष्ट किया गया है, "अल्मा कबूतरी" तक को उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया का लेखा-जोखा तो "गुड़िया भीतर गुड़िया" में हो गया है । अतः "अल्मा" तक के उपन्यासों की चर्चा हमने उक्त दो आत्मकथाओं के संदर्भ में की है, पर उनके अन्य उपन्यासों की प्रवृति और प्रकृति भी उसीके अनुरुप है । उन उपन्यासों में निरुपित जीवन-दृष्टि, स्त्री-विमर्श के आयाम और उनका "स्पिरिट" तो वहीं है जो कस्तूरी और मैत्रेयी के अनोखे संयोग से बना है । आत्मकथाओं में निरुपित देशकाल भी प्रायः वही है । बुंदेलखंड के गाँव और कस्बे । समय ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर से इक्कीसवी शताब्दी के आरंभ के

प्रथम दशक का । प्रमुख घटनाओं में स्वतंत्रता-प्राप्ति, भारत-पाकिस्तान विभाजन, विभाजन में समय की लोमहर्षक दरिन्देपन से भरपूर अमानुषी घटनाओं की त्रासदी, कौमी दंगे और भयंकर मार-काट, पंचवर्षीय योजनाएं पंचशील की बातें, सन् 1962 का चीनी हमला, हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे और भावना की चिन्दी-चिन्दी, उसी आघात में पंडित नेहरु की मृत्यु, थोड़े समय के लिए लाल बहादुर शास्त्री का प्रधानमंत्री होना, भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारत की फतह, उसी सिलसिले में हुई ताश्कंद-वार्ता में शंकास्पद स्थितियों में शास्त्रीजी का निधन, श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्री होना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, बांगलादेश के निर्माण में बंगबंधु मुजिबर रहमान को साथ देना, विश्व-राजकारण में इन्दिरा का छा जाना, लौह-महिला का बिरूद, इलाहाबाद कोर्ट में राजनारायण से हारने के बाद आपातकालीन स्थिति की घोषणा, कई नेताओं और बुद्धिजीवियों को जेल में ठूंस देना, रेणु की जेल-यात्रा और निधन, बाद में हुए चुनावों में इन्दिरा गांधी और संजय गांधी की जबरदस्त हार, सत्ता की बागडोर जनता-पार्टी के पास आना, पर कुछ ही समय में इन्दिराजी का पुनः सत्ता में आना, एक विमान-दुर्घटना में संजय गांधी की मौत, भिंडरानवाले का खालिस्तान के लिए आंदोलन, गुजरात का नव-निर्माण का आंदोलन, आरक्षण विरोधी आंदोलन, अपने ही दो पंजाबी गार्ड द्वारा इन्दिरा गांधी की हत्या, सिख विरोधी जनाक्रोश, राजीव गांधी के नेतृत्व में चुनाव, सदभावना लहर के कारण कांग्रेस को 2/3 से ज्यादा की बहुमती, राजीव गांधी की हत्या, केन्द्रीय अस्थिरता का राजकारण; पी.वी.नरसिंहमाराव के बाद देवगौड़ा, आइ.के.गुजराल, चन्द्रशेखर आदि का प्रधानमंत्री होना; बोफोर्स कांड, वी.पी.सिंह का मंडल आयोग, अड़वाणी की रथयात्राएं, बाबरी-मस्जिद-ध्वंस कांड, आतंकवादी प्रवृतियों का बढ़ना, बाजपेयी की भाजपा सरकार, गुजरात का कुख्यात नरसंहार प्रभुति का आलेखन मैत्रेयीजी ने इन दो आत्मकथाओं में किया है और इनका चित्रण उनके उपन्यासों में भी कहीं-न-कहीं हुआ है ।

स्वतंत्रता के बाद गाँव भी राजनीति की चपेट में आ जाते हैं । राजनीति की काली छाया हर क्षेत्र में फैल जाती है । शिक्षा तक उससे अछूती नहीं रह पाती । पंचायत तक के चुनावो में राजनीति आ जाती है । नवजागरण की चेतना लुप्त हो जाती है और पुनः पुराने मानव-विरोधी मूल्य तुल पकड़ने लगते है । गाँवो में भी माफियागीरी, गुण्डागर्दी, नवधनिकों की बदतमीजियां, ठेकेदारों में अत्याचार और जोर-जुल्म, मर्दवादी सोच के कारण ग्रामीण स्त्रियों पर भी

अत्याचार, जमीन-जायदाद के झगड़ो में हत्याएं, स्त्रियों के बलात्कार और जलात्कार, कौमी-एकता में दरार जैसी घटनाओं ने ग्रामीण जीवन को भी खत्म कर दिया है । "राग दरबारी" के लेखक श्रीलाल शुकल के शब्दों में स्वातंत्र्योत्तर गाँव अपने हरामीपन में पूरी तरह से पग गया है । इन सबका चित्रण मैत्रेयीजी ने नारी-विमर्श की अपनी स्वतंत्र दृष्टि के साथ किया है।

मैत्रेयीजी का नारी-विमर्श पुरुष बनाम स्त्री का नहीं है। वह स्त्री-पुरुष उभय को समाज का आवश्यक अंग मानती है। संसाररुपी रथ के दो पहिये है स्त्री-पुरुष। एक-दूसरे के दुश्मन नहीं। उनमें मैत्री भाव होना चाहिए, बराबरी होनी चाहिए, दोस्ताना संबंध होने चाहिए। मैत्रेयीजी के नारी पात्र एक हद तक, एक सीमा तक अत्याचार और अन्याय बर्दाश्त करते है, पर जब इनकी इन्तिहां हो जाए तब वह डटकर उनका मुकाबला करती है। फिर अन्याय करने वाला उसका पति ही क्यों न हो। योनिशुचिता और सती-सम्बन्धी उनके विचार भी परंपरा से मेल नहीं खाते। जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री-पुरुष में समानता होनी चाहिए। लड़के-लड़कियों का भेद मिटना चाहिए, बेटियों को भी मां-बाप की संपत्ति में बराबर का हक मिलना चाहिए, हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की सुविधाएं बेटियों को भी मिलनी चाहिए, खाप-पंचायतों की दादागीरी खत्म होनी चाहिए, वयस्क युवक-युवतियों को वोट का अधिकार ही नहीं अपने जीवन-साथी के चुनाव का अधिकार भी मिलना चाहिए। संक्षेप में मैत्रेयीजी कहीं भी गैर-बराबरी, शोषण, अत्याचार, अन्याय, मानव-विरोधी जीवनमूल्य आदि की तरफदारी नहीं करती है।

ऐसा कहा जाता है कि प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में ग्रामीण स्त्रियों का चित्रण किया था, मैत्रेयी उन स्त्रियों को गाँव में ले आई है। मतलब कि उन्होनें स्त्रियों के गाँव के गाँव मानो बसा दिए हैं। दूसरी बात यह है कि मैत्रेयी का अपने पात्रों के साथ गजब का तादात्म्य होता है। ऐसा लगता है कि परकया प्रवेश की प्रक्रिया द्वारा वह उन पात्रों में रस-बस जाती है। अशोककुमार के लिए ऐसा कहा जाता है कि जब-जब उन्हें कोई विशिष्ट चरित्र-रोल करना होता था, वह दिनों-महिनों उन चरित्रों में खोए रहते थे। भले मैत्रेयी की ये नायिकाएं काल्पनिक हैं, पर उन जैसी स्त्रियों को, लड़कियों को वह मिली जरुर है। कुछ उनसे, कुछ अपने जीवनानुभवों से, कुछ कस्तूरी से और कुछ उस दूसरी "गुड़िया" से लेकर मैत्रेयी ने अपने नारी पात्रों का सृजन किया है। अतः उनके उपन्यासों और कहानियों पर बात करते हुए, उनकी इन दो

आत्मकथाओं की पठन-यात्रा एक दिलचस्प अनुभव हो सकती है। जो केवल मैत्रेयी के साहित्य को पढ़ते है वे तो भाग्यशाली है ही, पर जो इन आत्मकथाओं के साथ उनको पढ़ते है, वे तो परम भाग्यशाली कहे जायेंगे।

जहाँ तक मेरा संज्ञान है मैत्रेयी पर इस प्रकार का कार्य अद्यावधि हुआ नहीं है। कुछ इसी प्रकार का शोधकार्य प्रभा खेतान के उपन्यासों पर भी हो रहा है और हमारे विश्वविधालय से ही हो रहा है। इस प्रकार के कार्य उन सभी लेखकों तथा लेखिकाओं पर हो सकते हैं जिनकी आत्मकथाएं या जीवनियां प्रकाशित हुई है या जिन पर कई सारे लोगों ने संस्मरण या रेखाचित्र लिखे है। मैत्रेयी के समग्र साहित्य को लेकर भी कार्य हो सकता है। उनकी इन आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनकी कहानियों और अन्य विधाओं को लेकर भी कार्य हो सकता है।

अंत में दुश्यन्तकुमार की ग़ज़ल के दो शेर मैत्रेयीजी के संदर्भ में प्रस्तुत कर रही हूँ ---

"हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए ;
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं ;
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए।"

कामना करती हूँ कि साहित्य के हिमालय से कोई मैत्रेयी जैसी, महाश्वेतादेवी जैसी, महादेवी जैसी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम और अजीत कौर जैसी गंगाएं निकलकर स्त्री और दलित की पर्वत-सी पीर को पिघला दें और यह जो सामंतवादी शोषणोंन्मुखी ढांचा है उसकी सूरत को बदल दें।

*****